विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/नि:शुल्क वितरण के लिए

सम्पादक

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ

बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन-456010

फोन : 0734-2521499, 0755-2660407

Email : mvspujjain@gmail.com
vikramadityashodhpeeth@gmail.com

Web : www.mvspujjain.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-2

भारतीय ज्ञान परंपरा में वनस्पति संरक्षण
डॉ. आनन्द कुमार शर्मा

पृष्ठ क्र. 3-4

राजशेखर द्वारा वर्णित भारत की भौगोलिक स्थिति
ईशान अवस्थी

पृष्ठ क्र. 5-6

उज्जयिनी के राजनैतिक इतिहास का सर्वेक्षण
डॉ. किरण शर्मा

पृष्ठ क्र. 7

सुबन्धु,दण्डी और बाण का श्रृंगार काव्य
यतींद्र तिवारी

पृष्ठ क्र. 8

दीर्घायु और आरोग्यता का ग्रंथ रस रत्नाकर
मिथिलेश यादव

भारतीय ज्ञान परंपरा में वनस्पति संरक्षण

डॉ. आनन्द कुमार शर्मा

भारतीय ज्ञान परंपरा के अनुशीलन से विदित होता है कि भारत के आदितम् सभ्य पूर्वजों ने प्रकृति एवं उसके उपादानों, पशु–पक्षियों, पादपों आदि को आध्यात्मिक रूप प्रदान किया है। भारतीय ज्ञान परंपरा में सनातन संस्कृति और पर्यावरण को अविछिन्न रूप से जोड़ा गया है। प्राक् धार्मिक जीवन पद्धति एवं धर्म का विकास प्रकृति एवं उसकी विभिन्न शक्तियों से प्रभावित होकर हुआ। इसी कारण चिरकाल से ही भारतीय सांस्कृतिक जीवन में धर्म एवं प्रकृति के संयोग एवं संबंध का चिंतन भारतीय ज्ञान परंपरा ने स्थायी रूप से समाहित किया है। पादप और पाषाण में परमात्मा के दर्शन कराने वाली भारतीय ज्ञान परंपरा ने धर्म में प्रकृति की वंदना को दृढ़ता के साथ स्थापित किया है। भारतीय संस्कृति का अनुशीलन करते हुए हम अनेक स्थलों पर वृक्ष एवं वनस्पतियों की पूजा एवं उनके संरक्षण की भावना के भाव का उल्लेख पाते हैं। सिन्ध–सरस्वती सभ्यता से लेकर वैदिक काल तक और वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक हम भारतीय धर्म एवं संस्कृति में प्रकृति–पूजा को निर्वाध एवं निरन्तर रूप से पाते हैं। तुलसी, पीपल, बरगद, केला, आम्रपत्र आदि वृक्षों की, गंगा, यमुना, सरस्वती आदि नदियों की, सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, पृथ्वी आदि के प्रति श्रद्धा एवं पूजा का भाव भारतीयों में हमेशा रहा है। इसके मूल में हमारे प्राचीन मनीषियों की दूरदर्शिता ही थी, जिन्होंने प्रकृति के इन रूपों को आध्यात्मिक संरक्षण प्रदान किया।

पद्म पुराण में वर्णित है कि पार्वती के श्राप के कारण विष्णु को पीपल का वृक्ष बनना पड़ा था। भगवतगीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं को वृक्षों में पीपल कहा है। स्कन्द पुराण में वर्णित है कि जिस घर में प्रतिदिन तुलसी की पूजा होती है, उसमें यमदूत प्रवेश नहीं कर सकते। भारतीय धर्मशास्त्रों में पेड़–पौधों और वनस्पतियों के रोपण, पोषण और संवर्धन को पुण्य कार्य माना गया है। जो व्यक्ति अपने जीवन में एक पीपल, एक नीम और एक बड़ का पेड़ लगाये, दस फूलों वाले वृक्षों और लताओं को रोपण करें, अनार, नारंगी और आम के दो–दो वृक्ष लगाये, वह कभी नरक में नहीं जाता। इस प्रकार भारतीय धर्म ने प्रकृति को अपना आवरण प्रदान करके, उसके संरक्षण की महान् परिपाटी का विकास किया। प्राचीन ऋषि–मुनियों ने प्रकृति एवं पर्यावरण को धर्म से जोड़कर उसके संरक्षण का मार्ग प्रशस्त किया। धर्म को प्रकृति से जोड़ने के मूल में और कुछ नहीं, प्रकृति और उसकी शुद्धि का भाव ही है। यज्ञ पर्यावरण और मन दोनों को पवित्र करता है और दोनों को प्रदूषण से बचाता है। भारतीय धर्म, संस्कृति ने हमेशा से 'वन' की वंदना की है। वन ने उसे संबल भी दिया है और सहारा भी, शक्ति भी दी है और साधना भी, राग भी दिया है और विराग भी। इस प्रकार प्रकृति एवं पर्यावरण का संबंध भारतीय धर्म में अभिन्न है।

भारतीय धर्म में प्राकृतिक पेड़–पौधों एवं वनस्पतियों को धर्म से अविछिन्न रूप से संयोजित करते हुए पेड़–पौधों एवं वनस्पतियों में देवी–देवताओं की प्रतिष्ठा एवं उनका वास मानकर पूजा–अर्चना का विधान किया गया है। इसके साथ ही धार्मिक विधि–विधानों में पेड़–पौधों एवं वनस्पतियों का प्रयोग अनिवार्य रूप से करके इन्हें धर्म एवं पूजा विधान का आवश्यक अंग बना दिया है। भारतीय धर्म ग्रंथों में पेड़–पौधों एवं वनस्पतियों की पूजा अर्चना एवं उनके देवत्व का आरोपण करके प्रकृति और धर्म के संबंध को ठोस तरीके से स्थापित किया गया है। मंत्रदृष्टा वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के कण–कण में भगवान के 'वास' और 'प्रकृति' के साथ परम तत्व की भावना को स्थापित किया है। वस्तुतः भारतीय धर्म में प्राकृतिक पेड़–पौधों, वनस्पतियों और वनों को 'देवतुल्य' माना है। सनातन भारतीय धर्म ने प्राकृतिक वनस्पतियों एवं वनों को धार्मिक आवरण देकर न केवल संरक्षण के भाव का बीजारोपण किया

अपितु धर्म के साथ अविछिन्न रूप से संयोजित एवं संबंधित कर दिया है। भारतीय सनातन धर्म में वृक्षों को 'वंदनीय' एवं 'पूजनीय' बताया गया है। ऋग्वेद में 'वन को देवी' एवं समस्त 'वन्य जन्तुओं की माता' कहकर संबोधित किया है, ऋग्वेद में वन की देवी 'अरण्यानी' कहकर सम्मानित किया है। वैदिक ग्रंथों में वन–वनस्पति एवं वृक्षों को देवत्व प्रदान करते हुए 'वनानां पतये नमः' एवं 'नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः' कहकर उनके रक्षकों को आदर प्रदान किया गया है। अथर्ववेद में वनों एवं वनस्पतियों को सुखदायी तथा समस्त प्राणियों का भरण–पोषण करने वाला कहा गया है। अथर्ववेद में एक स्थान पर उल्लेखित है कि वनों से आच्छांदित तलहटियों से युक्त धरा सबको सुख देती है। वहीं, दूसरे स्थान पर अथर्ववेद में वर्णित है कि जिस धरा पर वृक्ष व वनस्पतियाँ हमेशा खड़ी रहती हैं, वह भूमि समस्त प्राणियों का भरण–पोषण करने में सक्षम होती है। वैदिक ग्रंथों में वृक्षादि को ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण वनसम्पदा, वनस्पति जगत्, वृक्षों व उनके संरक्षकों और पालकों को भी 'वन्दनीय' एवं 'पूजनीय' कहा गया है –

"नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो वनानां पतये नमः
वृक्षायो पतये नमः औषधीनां पतये नमः
वृक्षायां पतये नमः अरण्यानां पतये नमः।"

पद्म पुराण में वर्णित है कि परमात्मा (भगवान) स्वयं कहते हैं कि सृष्टि रचना के समय मैं पेड़–पौधों और वनस्पतियों में विद्यमान रहा हूँ तथा माता पार्वती 'बेल' और लक्ष्मी जी 'तुलसी' में निवास करती है। महाभारत में वृक्षों को धर्म से जोड़ते हुए कहा गया है कि वृक्ष धर्म का पुत्र है। इसके साथ ही महाभारत के आदिपर्व में वृक्षों के महत्व को स्थापित करते हुए कहा गया है कि, ग्राम में एक भी पेड़ पौधों और फलों से युक्त हो वह ग्राम मन्दिर (चौत्य) के समान पूज्यनीय हैं।

पेड़–पौधों और वनस्पतियों को 'दैवी शक्ति' से संबंधित करते हुए 'रूद्रहृय उपनिषद्' में उल्लेखित है कि, पेड़–पौधों में शिव (रूद्र) और लताओं में पार्वती (उमा) का निवास होने के कारण इन्हें नमन करना चाहिए। उपनिषदों में पेड़–पौधों में प्राण तत्व को मानकर उन्हें 'चेतन जीव' की तरह माना है, साथ ही उन्हें 'जीवनदायी' माना गया है। 'केन उपनिषद्' में कहा गया है कि, वन, 'ब्रह्मा' है, अर्थात् वनों को 'ब्रह्म' (परमपिता परमात्मा) की संज्ञा दी गयी है। यह वनों के दैवीकरण का प्रतीक है। यजुर्वेद में पेड़–पौधों एवं वनस्पतियों को 'देवरूप' अर्थात् देवताओं का रूप बताया गया है, साथ ही इनके दैवीय रूपों और दैवीय शक्तियों से देवताओं को भी सहयोग किया। यजुर्वेद में वर्णित है कि, सुवर्णमयी पत्तों, मधुमय शाखाओं, स्वादिष्ट फलों से युक्त 'वनस्पति देव' ने देवताओं के साथ मिलकर 'इन्द्र' को बढ़ाया।

'वनस्पति देव' अपने अग्रभाग से स्वर्ग को स्पर्श, मध्य भाग से अन्तरिक्ष को एवं मूल जड़ भाग से पृथ्वी को स्पर्श करते हैं, इन गुणों से परिपूर्ण है 'वनस्पति देव' अपने यजमान को धन और शक्ति देने के लिए आपसे प्रार्थना है, अतः आप

'घृतपान' करें। यहाँ यज्ञ के द्वारा 'वनस्पति देव' को आहूति देने का संकेत है। अथर्ववेद में भी वनस्पतियों को 'देव' कहा गया है। सायण का मत है कि, यह वनों का 'अधिष्ठाता देव' है, जो इसमें अंतर्निहित है। अथर्ववेद में वनस्पति से मृतप्राय पुरूष के जीवन के लिए प्रार्थना की गयी है। अथर्ववेद में ही 'वनस्पति' को वृक्षों और लताओं का राजा कहा गया है। अथर्ववेद में धार्मिक यज्ञ के दौरान पृथिवी के साथ वनस्पतियों को 'देवस्वरूप' मानते हुए यज्ञ में आहूति देने का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद में वर्णित है कि, एक ऋषि 'वनस्पति वृक्ष देवता' से प्रार्थना करता है कि, वह साधक के लिए सरल और मधुर बना रहे। अथर्ववेद में अनेक स्थानों पर 'वनस्पति देवता' की स्वतंत्र एवं अन्य देवताओं के साथ स्तुति की गयी है।

सनातन भारतीय हिन्दू धर्म पेड़–पौधों और वनस्पतियों को 'देवतुल्य' मानकर उनकी स्तुति और पूजा–अर्चना का वृतान्त सर्वत्र करता है। वनगमन के समय माता सीता एवं भगवान श्रीराम स्वयं पेड़–पौधों एवं वनस्पतियों को 'देवतुल्य' मानकर उनकी स्तुति, पूजा अर्चना और प्रार्थना करते हैं। रामायण के अयोध्याकाण्ड में वर्णित है कि, जब भगवान श्रीराम और माता सीता वनगमन के समय यमुना नदी को पार करते हैं, तब माता सीता 'वटवृक्ष' की पूजा करतीं हैं, परिक्रमा करतीं है और अपनी मनोकामना 'वटवृक्ष' को देवता स्वरूप मानकर करती है और प्रार्थना करती हुई कहती है कि, 'हे महावृक्ष (वट वृक्ष) मैं आपको सिर झुकाकर नतमस्तक् होकर नमस्कार करती हूँ और प्रार्थना करती हूँ कि, आप ऐसी कृपा करें कि, मेरे पतिदेव वनवास की प्रतिज्ञा को पूर्ण करके तथा हम सभी सकुशल लौटकर माता कौशल्या एवं माता सुमित्रा देवी के दर्शन कर सकें।

इसी प्रकार 'चम्पू रामायण' में भी वन, वनस्पतियों और पेड़ – पौधों का दैवीकरण एवं मानवीकरण का वृतान्त मिलता है, जिसमें माता–सीता के अपहरण के बाद भगवान श्रीराम के वियोग में विलाप करते देख 'वन देवताओं' की आँखों में आँसू भर आने का वृतान्त है।

राजशेखर द्वारा वर्णित भारत की भौगोलिक स्थिति

ईशान अवस्थी

प्रसिद्ध काव्यशास्त्री, कविराज और नाटककार राजशेखर (857–884 ई.) के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'काव्यमीमांसा' के 'देश–विभाग' नामक सत्रहवें अध्याय में प्राचीन भारत की भौगोलिक स्थिति पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इस दृष्टि से यह सामग्री अत्यन्त ही उपयोगी है। इस अध्याय के आरंभ में देश–काल का महत्व बताते हुए राजशेखर ने लिखा है कि देश और काल का विभाग करने वाला कवि, अर्थो के दर्शन की दिशा में दरिद्र नहीं रहता (देशं कालं च विभजमान कविर्वार्थदर्शनदिशि दरिद्राति)। इसका यह आशय है कि जिस कवि को देश और काल का ज्ञान रहता है, उसे वर्णनीय पदार्थों का अभाव नहीं रहता। इसके विपरीत यदि कवि को देश–काल का ज्ञान न हो तो वह विभिन्न देश–कालों की प्राकृतिक स्थिति, उन–उन देशों के सामान्य और विशेष लोक व्यवहार उन ऋतुओं तथा महीनों आदि में उत्पन्न होने वाली वस्तुओं तथा आचार–व्यवहार आदि का वर्णन करने में विमूढ़ रहता है, उसकी रचना अप्रौढ़ एवं हास्यास्पद हो जाती है। अतः किसी भी कवि के लिए देश–काल का ज्ञान नितान्त अपेक्षित है। इस सन्दर्भ में पूर्वाचार्यों के विभिन्न मतों का उल्लेख करते हुए राजशेखर ने इक्कीस लोकों का वर्णन करने के उपरान्त भू–लोक के सात महाद्वीपों का इस प्रकार नामोल्लेख किया है 1. जम्बु, 2. प्लक्ष. 3. शाल्मली, 4. कुश, 5 क्रौंच, 6. शाक और 7. पुष्कर। सात महाद्वीपों का उल्लेख करने के उपरान्त राजशेखर ने तीन, चार अथवा सात समुद्रों से सम्बद्ध पूर्ववर्ती परम्पराओं का वर्णन किया है। उसके बाद लिखा है कि जम्बूद्वीप के मध्य में पर्वतों का प्रथम राजा सुवर्णमय मेरु पर्वत है, जो मूर्तिमान् ओषधियों का आकर और समस्त देवताओं का आवास स्थल है।–

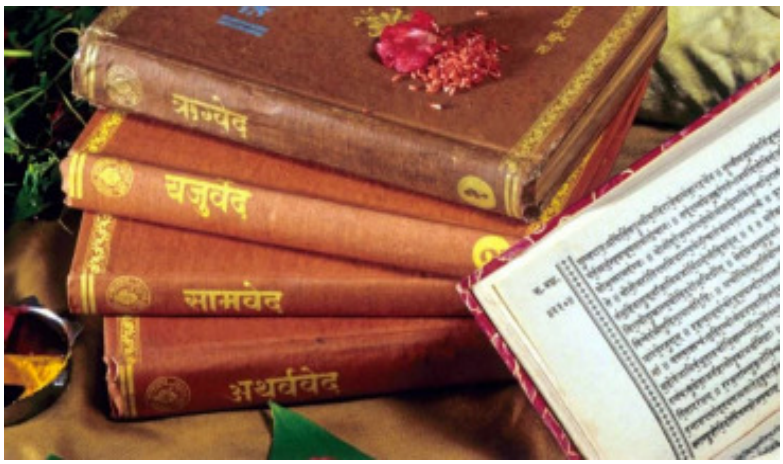

मध्ये जम्बूद्वीपमाद्यो गिरीणां मेरुर्नाम्ना काञ्चनः शैलराजः।
यो मूर्तिनामोषधिना निधनं यशश्चवासः सर्ववृन्द्रकाणाम्।।

इसी सुमेरु पर्वत को सीमा (अवधि) मानकर ब्रह्मा ने उसके ऊपर विश्व की रचना की। इसीलिए सुमेरु को पर्वतों में प्रथम एवं प्रधान स्थान दिया गया है। उसके चारों ओर इलावृत्त वर्ष है। जम्बूद्वीप के उत्तर में क्रमशः नील, श्वेत और श्रृंगवान् नाम के तीन वर्ष पर्वत और रम्यक, हिरण्मय तथा उत्तर–कुरु देश है। उनके दक्षिण में निषध, हेमकूट और हिमवान् नामक तीन वर्ष पर्वत और हरिवर्ष, किंपुरुष तथा भारत ये तीन वर्ष हैं। उनमें से एक यह भारतवर्ष है (तत्रेद भारतवर्षम)। उसके नौ भेद हैं 1. इन्द्रद्वीप, 2. कसेरुमान्, 3. ताम्रपर्ण, 4. गभस्तिमान्, 5. नागद्वीप, 6. सौम्य, 7 गन्धर्व, 8. वरुणद्वीप और 9 कुमारी द्वीप। ऐसा प्रतीत होता है कि इन नौ द्वीपों के अन्तर्गत श्रीलंका, मलय, जावा, सुमात्रा तथा बर्मा आदि देश भी सम्मिलित थे। इन नौ द्वीपों का पाँच भाग जलमय और पाँच भाग स्थलमय है। इस प्रकार प्रत्येक द्वीप की सीमा एक सहस्र योजन है। वे दक्षिण समुद्र से हिमालय तक फैले हुए है और परस्पर अगम्य है। इन सभी द्वीपों पर जो विजय प्राप्त करता है वह सम्राट् कहा जाता है। कुमारी द्वीप से लेकर विन्दुसर तक एक सहस्र योजन का भाग चक्रवर्ति क्षेत्र कहा जाता है। इस समस्त क्षेत्र पर विजय करने बाला राजा चक्रवर्ती कहा जाता है। यही वह विन्दुसर है, जहाँ भगीरथ ने गंगावतरण के लिए तप किया था।

इस विन्दुसर का पुराणों तथा महाभारत आदि में विस्तार से उल्लेख हुआ है। सम्प्रति भी उसका अस्तित्व और महत्व पूर्ववत् विद्यमान है। गंगोत्री से वह लगभग दो भील ऊपर स्थित है। अन्तिम कुमारी द्वीप के सम्बन्ध में राजशेखर ने आगे लिखा है इस कुमारी द्वीप में सात कुल पर्वत है, जिनके नाम हैंरू 1. विन्ध्य, 2. पारियात्र, 3. शुक्तिमान, 4. अक्ष. 5. महेन्द्र, 6. सह्य और 7 मलय। मलय पर्वत के राजशेखर ने चार भेद बताये हैं। भारत की पूर्व, दक्षिण पश्चिम, उत्तर, मध्य और अन्तर्वेदी आदि दिशाओं का राजशेखर ने विस्तार से वर्णन किया है। राजशेखर ने लिखा है कि पूर्व और पश्चिम समुद्र के तथा हिमालय और विव्य के मध्य में आर्यावर्त है। इस आर्यावर्त में चार वर्णों और चार आश्रमों की व्यवस्था प्रचलित है। इन्हीं वर्णों और आश्रमों के आधार पर यहाँ का सदाचार निश्चित है। प्रायः कवियों का व्यवहार आर्यावर्त की प्रथा के अनुकूल होता है। इस आयावर्त में वाराणसी से पूर्व की ओर पूर्व देश है। इसमें अंग, बंग, कलिंग, कोशल, तोषल, उत्कल, मगध मुद्गर, विदेह, नेपाल, पुण्ड्र, प्राग्ज्योतिष, ताम्रलिप्तक, मलद, मल्लवर्तक, सुहा और ब्रह्मोत्तर आदि जनपद सम्मिलित हैं। इस पूर्व देश में ही बृहद्घगृह, लोहितगिरि चकोर, दुर्दुर नेपाल और कामरूप आदि

पर्वत, शोण तथा लौहित्य नद, और गंगा, कारतोया, कपिशा आदि नदियों अवस्थित हैं। माहिष्मती (इन्दौर से 40 भील दक्षिण नर्मदा नदी के तट पर अवस्थित महेश्वर नामक स्थान) के आगे दक्षिणापथ है। उसमे महाराष्ट्र, माहिषक, अश्मक, विदर्भ, कुन्तल, क्रथकैशिक, सूर्पारक, काची, केरल, कावेर मुरल, वानवासक, सिहल, चोल, दण्डक, पाण्ड्य, पल्लव, गांग नाशिक्य, कोकण, कोल्लगिरि और वल्लर आदि जनपद है। उनमें दक्षिण विन्ध्य महेन्द्र मलय, मेकल, पाल, मज्जर सह्य तथा श्रीपर्वत आदि पर्वत, और नर्मदा ताप्ती, पयोष्णी, गोदावरी, कावेरी, भीमरथी, वेणा कृष्णवेणा, वंजुरा, तुंगभद्वा, ताम्रपणी उत्पलावती तथा रावणगगा आदि सम्मिलित हैं। देवसभा (देवास–मध्य प्रदेश) के आगे पश्चिम देश है। वह देवसम्, सुराष्ट्र दशेरक, त्रावण, मृगुकच्छ कच्छीय अनाते, अर्बुद ब्राह्मणवाह और यवन आदि जिले हैं। गोवर्धन, गिरिनगर, देवसम, माल्य शिखर और अर्बुद आदि पर्वत, और सरस्वती ये नदियाँ भारत की भौगोलिक तथा ऐतिहासिक स्थितियों की सूचक तथा धार्मिक और सामाजिक जीवन की प्रेरणास्रोत रही हैं। वे अतीत के समान आज भी मनुष्य की आध्यात्मिक तृप्ति का साधन और कृषि तथा व्यापार की दृष्टि से भौतिक उन्नति की सहायिका बनी हुई हैं।

नदियों, वनस्पतियों और ओषधियों के उद्गम पर्वतों का भी वेदों से लेकर परवर्ती साहित्य तक विस्तार से वर्णन किया गया है। उन्हें वृक्षकेशा (वृक्ष रूपी बालों वाले) कहा गया है। वे पंखयुक्त और जीवधारी थे, जिससे कि इच्छानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाते थे। इन्द्र ने उनके पंख काट कर उन्हें स्थिर एवं दृढ़ किया। पर्वतों की दो मुख्य श्रेणियों का विभाजन हुआ है–दक्षिणी और उत्तरी। दक्षिण में विन्ध्यवर्ती और उत्तर में हिमालयवर्ती पर्वतमालाओं की गणना की गयी है। हिमालय की आध्यात्मिक तथा भौतिक गरिमा से भारत का गौरव विश्व में विश्रुत हुआ। इन पर्वतों ने यहाँ के जन–जीवन के निर्माण तथा उन्नयन में महत्वपूर्ण योगदान किया और उससे भी अधिक इस राष्ट्र की भौगोलिक सीमा के रूप में उसकी सुरक्षा को सतत अजेय बनाये रखा। इस प्रकार सुदूर अतीत से लेकर आज तक भारत के आध्यात्मिक तथा भौतिक जीवन के उत्थान में समुद्रों, पर्वतों, और नदियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस देश के साहित्यकारों और कलाकारों के वे प्रेरणास्रोत बने रहे। प्राचीन भारत की भौगोलिक तथा प्राकृतिक स्थिति के सम्बन्ध में वेदों से लेकर पुराणों और परवर्ती विचित्र विषयक धच्चों तक पर्याप्त सामग्री बिखरी हुई मिलती है। इस सामग्री में लोक–लोकान्तरों, समुद्रों, नदियों, पर्वतों और उपत्यकाओं का विस्तार से उल्लेख हुआ है। उसके द्वारा तत्कालीन राष्ट्र, जनपदों, देशों और वहीं की विभिन्न निवासी जातियों के स्वभाव, प्रभाव तथा नैतिक वैचारिक मान–मूल्यों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। वैदिक भारत के सम्बन्ध में विचार करने पर ज्ञात होता है कि वेदों के ऋषि तत्कालीन भौगोलिक तथा प्राकृतिक परिस्थितियों से अपरिचित एवं अनपेक्षित नहीं थे। उनकी दृष्टि व्यापक थी और उन्होंने रामरत ब्रह्माण्ड पर विचार करते हुए उसे पृथिवी–लोक, अन्तरिक्ष–लोक और स्वर्ग–लोक इन तीन विभागों में विभक्त किया, ऋग्वेद में जिसे त्रयी नाम से कहा गया है। इस प्रथम विभाग पृथिवी को ऋग्वेद में भूमि, क्ष्मा और ग्मा आदि अनेक नामों से कहा गया है और उसे महान् (मही), चौडी (उर्वी), विस्तृत (उत्ताना) तथा असीम (अपारा) बताया गया है। संहिताओं में पृथिवी और अन्तरिक्ष का अलग–अलग वर्णन होने के साथ–साथ उनका युगल–रूप में भी उल्लेख हुआ है, यथा रोदसी, क्षोणी और द्यावा पृथिवी आदि। इन युगल रूपों को 'अर्धक' कहा गया है, जिससे ज्ञात होता है कि वे एक–दूसरे की ओर मुँह किये हुए थे।

प्राचीन ग्रन्थों और आधुनिक खोजों के आधार पर विदित होता है कि पृथिवी महासागर से घिरी हुई मण्डलाकार या वृत्ताकार है, मंत्र–संहिताओं में ऐसा कुछ नहीं कहा गया है। संहिताओं में अन्तरिक्ष–लोक को 'वायुमण्डल' कहा गया है। मेघ और कुहरे से युक्त इस लोक को 'रजस्' भी कहा गया है, जो कि जलमय है और जिससे समस्त नदी–नदों को जल–धाराएँ प्राप्त होती हैं। उसे अन्धकारावृत भी कहा गया है और उसका एक द्विस्तरीय तथा त्रिस्तरीय विभाजन भी देखने को मिलता है। इस अन्तरिक्ष–लोक में जल, सोम, अलौकिक अग्नि और विष्णु का निवास है। तृतीय ब्रह्माण्ड भाग रवर्ग–लोक की संहिताओं में दिव, व्योमन् और प्रकाश से परिपूर्ण (प्रदीप्त स्थान, रोचन) कहा गया है। इस व्योमन में देव, पितर और सोम निवास करते हैं। उसे सानु (शीर्ष), विष्टप (रातह) और पृष्ठ (गिरिपृष्ठ) आदि नामों से भी कहा गया है। ब्रह्माण्ड विभाजन का यह त्रिविध स्वरूप वर्णन ऋग्वैदिक ऋषियों की देन है। किन्तु इस विराट परिकल्पना के आधार पर वैदिक राष्ट्र की भौगोलिक परिधियों की वास्तविकता का पता लगाना संभव नहीं है। ऋग्वेद में वस्तुतः इस दृष्टि से कुछ नहीं कहा गया है। अर्थर्ववेद के कतिपय सन्दर्भों से तत्कालीन भारत के भौगोलिक परिवेश का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। अथर्ववेद में गान्धार, मूजवत्, महावृष, बाहुलीक, मगध तथा अंगदेश का उल्लेख हुआ है। एक मंत्र में अष्टचक्र (या अष्टापद) आकारयुक्त अयोध्या का और एक अन्य मंत्र में वरुणावती का उल्लेख हुआ है। वरुणावती में विद्वानों ने वाराणसी का समीकरण किया है। अन्य दो मन्त्रों में दक्षिण–पश्चिम समुद्र की ओर संकेत किया गया है। अथर्ववेद के उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि अथर्ववैदिक आर्यों ने दक्षिण, पश्चिम और पूर्व की ओर अपनी सीमाओं का विस्तार कर लिया था। वहाँ उन्होंने अपने प्रभुत्व तथा अपने देवताओं की स्थापना की और अपनी संस्कृति का विकास किया। उक्त उल्लेखों के आधार पर ज्ञात होता है कि पश्चिम में बल्ख (बलीक) से लेकर पूर्व में बिहार तक अथर्ववैदिक आर्यों का अस्तित्व व्याप्त हो चुका था। प्राचीन भारत की भौगोलिक स्थिति के सम्बन्ध में मनुस्मृति में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। कहा जाता है कि मनु द्वारा सूत्र–रूप में प्रोक्त उपदेशों को भृगु मुनि ने श्लोक–रूप में निबद्ध कर मनुस्मृति के रूप में प्रकाशित किया।

उज्जयिनी के राजनैतिक इतिहास का सर्वेक्षण

डॉ. किरण शर्मा

उज्जयिनी का प्रागैतिहास उज्जयिनी के पूर्व में देवास मार्ग पर 6 कि.मी. पर एक टेकरी है, इस पर कुछ वर्ष पूर्व गोलाश्म उपकरण मिले हैं जिनका अनुमानित काल 5 लाख वर्ष से पूर्व का है, ऐसे उपकरण मालवा में भीमबेठका, भोपाल, राऊ तथा इन्दौर के बीच की पहाड़ियाँ तथा आगर, आमला, नलखेड़ा आदि स्थानों पर मिले हैं। पृथ्वी की जलवायु पर्याप्त ऊष्ण और नम थी इसके परिणामस्वरूप यहाँ की ज्वालामुखी तप्त रस से बनी चट्टानें जो संभवतः 20 करोड़ वर्ष पूर्व ही बन चुकी थीं, क्षरित होकर और उनमें स्थित लौह तथा एल्युमिनियम के रासायनिक परिवर्तन से नीमच, आगर, महू, भोपाल, गुना आदि में मिलने वाली लौह मृत्तिका तैयार होती रहीं। प्रतिनूतन काल, जो अनुमानतः 30 से 70 लाख वर्ष के पूर्व प्रारंभ हुआ होगा, इसी जलवायु से प्रभावित रहा। वर्ष भर में 150 इंच से अधिक वर्षा तथा तापमान से सतत ऊपर रहा होगा। करीब इन्हीं दिनों हिमालय में हिम तथा अंतरहित या हिमोत्तर युग की श्रृंखला प्रारम्भ हुई।

हिमयुग में भारतीय प्रायद्वीप भयानक ठंड तथा शुष्क जलवायु रहती थी तथा हिमोत्तर युग प्रलयंकारी। इसके परिणामस्वरूप प्रथम व द्वितीय प्रलयंकर युग में लोहमृत्तिका का स्थानान्तरिक प्रारम्भ हुआ, जो भीमबेटका ए–28/29/30 तथा आगर विदिशा, विलखिरिया, भोपाल आदि स्थानों पर आज भी विद्यमान है। इन्हीं में अश्यूलीय शैली के उपकरण मिलते हैं। इन्हीं युगों में सर्वत्र नदी घाटियों में निम्नतर स्तरों में भी ये उपकरण मिलते हैं, उज्जयिनी के क्षिप्रा तटों पर भी डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर को मिले हैं। इसके पश्चात् मध्यपूर्वाश्मीय तथा उत्तर पूर्वावमश्मीय काल के अश्मोपकरण उज्जयिनी के चारों ओर फैली पहाड़ियों पर यथा धर्मबलड़ा, सोढंग, माधवपुरा, नवलखा, बिजासनी, हासामपुरा आदि से भी प्राप्त हुए है। नदी ने जो रेतीले स्तर जमाये हैं, उनमें हाथी की पृष्ठ हड्डी या स्केप्युला मिले हैं। ऐसे ही परवर्ती रेतीले स्तर से ऊट के पैर की अश्मीभूत हड्डी मिली है, जो उत्तरपुराश्मीय काल की है। उतरपुराश्मीय (अपर पॉलिओलिथिक) काल में सम्पूर्ण भारत भयानक खुश्की की चपेट में आ गया था। उज्जयिनी व इसी मालवा पठार पर शतुरमुर्ग का संचार हो रहा था। इस प्राणी के अण्डे रविशंकर नगर, भोपाल तथा उज्जैन जिले में दंगवाड़ा के पास कपिलेश्वर में मिले हैं। आज के प्राज्ञ मानव (होमोसेपियन) का अवतार या विकास हुआ। यह धनुर्धारी था तथा शैलाश्रयी चित्रकला का आविष्कारक था। यह काल साधारणतया 30 हजार से 16 हजार वर्ष पूर्व तक विद्यमान रहा। पुनश्च नमी का प्रवेश हुआ तथा आज से 10 से 12 हजार वर्ष पुर्व कुलावती या मानसून जलवायु का प्रारम्भ हुआ।

मालवा के क्षेत्र में आज से 4500 वर्ष पूर्व से मांधाता के नेतृत्व में हैहयों ने प्रवेश किया। उन्हें यहाँ वन्य जातियों के कर्कोटक नागों (संभवतः कोरकू) से संघर्ष लेना पड़ा। यह संघर्ष संभवतः मध्याश्मीय वन्य जातियों व कृषिकार जातियों का था तथा कृष्किार अपने ताम्र–कांस्य उपकरणों के कारण यहाँ स्थायी निवास कर पाये। ये कृषिकार कायथा सभ्यता के उन्नायक थे। इनकी सभ्यता के अवशेष उज्जयिनी से नहीं पाये गये हैं जबकि उज्जयिनी के आसपास कायथा, दंगवाड़ा, मसवाडिया, आजाद नगर, इन्दौर, बांगड, बिलावली, कपिलेश्वर, मक्सी आदि स्थानों पर मिले हैं। परवर्ती आहाड़ सभ्यता 4 हजार से 3800 वर्ष पूर्व तथा मालव ताम्राश्मीय सभ्यता 3800 से 3500 वर्ष के मध्य

मालवा में विद्यमान थी। उनके भी अवशेष यहाँ नहीं मिले हैं। डॉ. वाकणकर को ऐसा लगता था कि कायथा, आहाड़ व मालव ताम्राश्मीय सभ्यताओं के काल में माहिष्मती (महेश्वर) ही मालवा का प्रमुख केन्द्र रही है।

महाभारत का प्रसंग हड़प्पीय सभ्यता के अंतिम काल में हुआ है और उसके पश्चात् जो सांस्कृतिक शैथिल्य आया है वह ताम्राश्मीय सभ्यताओं के पश्चात् के स्तरों में सर्वत्र दिखाई देता है। अवंति अधिपति, विंद अनुविंद के महाभारत में बारे जाने पर यह स्थिति आई होगी। इस समय मौर्य पूर्व के काले लाल पात्रों का काल इस क्षेत्र में सर्वत्र दिखाई देता है। उज्जैन में सांदीपनि आश्रम क्षेत्र में धूसर तथा काले राजित पात्रों के पूर्व की बस्तियों पायी गयी है और यही महाभारत का काल माना जा सकेगा। उज्जयिनी महानगर नहीं था, अपितु सांदीपनी आश्रम का सहयोगी महाग्राम रहा होगा। यह बस्ती आश्रम के आसपास तथा ऋणमुक्तेश्वर तक रही।

विंद–अनुविंद की मृत्यु के पश्चात् माहिष्मती का स्थान उज्जयिनी को मिला। यद्यपि उनके पश्चात् किन राजाओं ने यहाँ राज्य किया। ज्ञात नहीं होता, यह संभव है कि नंदों के मगध में उदय के साथ प्रद्योतपूर्व मालवा में आये और अपने साथ चित्रित धूसर पात्रीय सभ्यता जो लौह प्रयोगी थी, यहाँ ले आये। यही काल था जब हड़प्पीय प्राकार (इंटों के) के स्थान पर विशाल मृण्मय प्राकार सर्वत्र विकसित हुए। उज्जयिनी में भी उन दिनों ऐसे विशाल प्राकार गढ़ क्षेत्र में तथा आग्यापीर की तलाई से कालियादेह दरवाजे तथा वहाँ से अवंतिपुरा, गोवर्धन ताल के उत्तरी किनारे होते हुए नगरकोट की रानी तथा मण्डी प्रांगण से कानीपुरा की ओर जाते थे। बीच में एक घुमाव था, जो नगरकोट की रानी से मण्डी प्रांगण के पश्चिमी से ऋषि तलाई तक था। इस मृण्मय प्राकार पर ईंटों की दीवार भी थी, जो ईंट चुनाई में नष्ट हो गई पर मण्डी प्रांगण बनाते समय डॉ. वाकणकर को स्पष्टतया दिखाई दी थी। ऐसी रचना विदिशा, कायथा, आजाद नगर, इन्दौर में भी मिलती है। चण्डप्रद्योत, पालक आदि के समय इस नगर का विकास हुआ था। गढ़कालिका के मूल प्राकार में पूर्व से आने का एक मार्ग था। यह मार्ग विश्व का सबसे प्राचीन गिट्टी का बना मार्ग था इसे डॉ. बनर्जी ने 1954–56 के उत्खनन बीच खोजा था। संभवतः इसी मार्ग से प्रद्योत कन्या वासवदत्ता का हरण कर वत्सराज उदयन भागा था। प्रद्योत पूर्व काल में प्रचण्ड जल प्लावन के कारण उज्जैन नगर को क्षिप्रा ने पश्चिम की ओर काटना प्रारम्भ किया। उस समय नगर को बचाने के लिये सीशम, काला अंजन तथा सागवान की विशाल लाटों का संरक्षण प्राकार खड़ा किया गया। यह प्राकार ऋणमुक्तेश्वर से ओखलेश्वर के निकट घुमाव देकर बनाया गया थ तथा इसने नदीं को ढाई हजार वर्ष तक आगे बढ़ने नहीं दिया।

मत्स्येन्द्रनाथ के निकट 1936 में इसकी खुदाई की गई और वे पाट आज विक्रम कीर्ति मंदिर में प्रदर्शित है। 43 वर्षों में नदी से पुराने टीलों को बीस फुट से अधिक काट दिया है। प्रद्योत के प्रासाद का पता नहीं चला किन्तु भर्तृहरि गुफा के पीछे 36 इंच लंबी, 6 इंच मोटी तथा 18 इंच चौड़ी ईंटों का 36 फुट लम्बाई–चौड़ाई का जो कुण्ड मिला है, वह संभवतः उसकी वाटिका की पुष्करणी हो। यहाँ मौर्य पूर्व मुद्रा भी डॉ. वाकणकर को मिली थी। प्रघोत के पश्चात उसका छोटा लड़का पालक राज्य करने लगा पर उसके अत्याचारों से तंग आकर उज्जयिनी जनपद ने गोपाल को जो पालक का बड़ा भाई था तथा उसके द्वारा बंदी किया गया था, राज्यासीन किया। उसके पश्चात् विखाखयूप तथा बाद में आर्यक तथा नंदीवर्धन अवंतिवर्धन ने यहाँ राज्य किया। प्रद्योत से मगध का संघर्ष प्रारम्भ हुआ और उसका अन्त ननिवर्धन की पराजय तथा प्रद्योत साम्राज्य की समाप्ति में हुआ। प्रद्योत का राज्य तक्षशिला तथा मगध के पश्चिम तक था। वह पुराणों के अनुसार 138 वर्षों में नष्ट हो गया। 34 वर्षों के शैशुनाग आधिपत्य के पश्चात् 40 वर्ष नंदों का आधिपत्य यहाँ रहा, पर उनके अस्तित्व के प्रमाण उज्जयिनी में अब नहीं मिलते। चन्द्रगुप्त मौर्य के आधीन अवंति प्रदेश रहा होगा। संभवतः पश्चिमी साम्राज्य के संरक्षणार्थ यहाँ प्रान्तीय राजधानी रखी गई थी। इसी समय यहाँ कानीपुरा (कन्हग्राम) का स्तूप बनाया गया। यह चारों ओर ईंटों का बनाया गया था तथा बीच में आसपास की गिट्टी भर दी गई थी। इस विशाल स्तूप के मलबे का ढेर आज 100 फीट ऊँचा तथा वैश्या टेकरी के नाम से जाना जाता है।

महावग्गानुसार यह अशोक के शासन से पूर्व का है इसके निकट दो और किन्तु छोटे स्तूपों की टेकरियाँ हैं एक धराशायी हो चुकी है। कतिपय इतिहासकारों ने इसे वैश्य पुत्री अशोक पत्नी देवी तथा छोटे स्तूपों को महेन्द्र संघमित्रा से जोड़ा है, पर ग्रांथिक प्रमाण या पुरातत्वीय प्रमाण नहीं है। अशोक उज्जयिनी में महाकुमार के रूप में राज्य करता रहा। मौर्यों के पश्चात् यहीं यद्यपि यह मान्यता है कि पुश्चरित्र ने राज्य किया किन्तु उसकी या अग्निमित्र की कोई मुवाएँ यहीं नहीं मिली है किन्तु यहाँ मौर्यों के पश्चात् रट्टी मदन, शक्ति, भूमिमित्र, दस तथा शातकर्मियों का आधिपत्य रहा है। रती मदन ने संभवतः एक पुष्कर तथा नहर बनाई थी। उसके सिक्कों पर यह दृश्य अंकित है तथा मी.र. बनर्जी को नहर के अवशेष भर्तृहरि की गुफा के उत्तर पूर्व में मिले थे।

उज्जयिनी से प्राप्त गुफाओं से प्रतीत होता है कि यहाँ मकरध्वज, मीनध्वज, चक्रध्वज, हरितध्वज, सिंहध्वज, नदिध्वज, हलध्वज, मंदिरों के सन्मुख खड़े किये गये थे क्योंकि उपर्युक्त ध्वज उज्जयिनी चिह्न वाली मुद्राओं पर अंकित पाये गये हैं। शुंग काल के यक्ष की प्रतिमा बुधवारिया रामोला (रामद्वारा) से प्राप्त हुई है। एक सील स्तम्भ पर यक्ष यक्षिणी का उत्कीर्ण चित्र, मिट्टी का यक्षमुख, हारीति, बुद्ध तथा स्त्री युक्त पात्र मिले है। इस युग की वेदिका जो साँची–विदिशा परंपरा में है, मिट्टी के खिलौने के रूप में मिली हैं। चंपा पुष्प अलंकरण, कपिजातक का अंकन भी मिला है। पिंगलेश्वर की मूल प्रतिमा पंचमुख शिवलिंग भी शुगकालीन है।

भारत में उपासना और तन्त्रवाद का उदय

यतींद्र तिवारी

भारत में उपासना का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन है। न केवल साहित्यिक स्रोतों से, अपितु प्रागैतिहासिक तथा ऐतिहासिक युगों की उपलब्ध पुरातत्व एवं कला–सामग्री से भी उसकी प्राचीनता प्रामाणित होती है। सिन्धु संस्कृति के उपलब्ध अवशेषों से पता चलता है कि तत्कालीन समाज में मातृपूजा तथा लिंगपूजा का प्रचलन था। उन्हीं के द्वारा बाद में तान्त्रिक पन्थों का उदय हुआ। वैदिक ऋषियों के प्रकृति–पुरुष के रहस्यमय उद्‌गार ही तान्त्रिक धर्म के मूल उद्‌गम हैं। उसकी व्यापक तथा गम्भीर भूमिका का निर्माण उपनिषदों तथा दर्शनों में हुआ। उपनिषदों का ब्रह्म–माया–सिद्धान्त और कपिल के सांख्य दर्शन का प्रकृति–पुरुष विवेचन तान्त्रिक धर्म के विकास के परिचायक हैं। उसकी प्रतिष्ठा पुराणों के देवतावाद और विशेष रूप से शक्ति–उपासना के विभिन्न रूपों में हुई।

तान्त्रिक उपासना का केन्द्र यही शक्ति–पूजा रही है। अदिति, पृथ्वी, सरस्वती (इडा, भारती) आदि वैदिक मातृदेवियाँ शक्ति–पूजा की स्रोत रही हैं। ऋग्वेद का देवी–सूक्त वैदिक संस्कृति का केन्द्र रहा है। उसमें वर्णित ब्रह्म और वाक् की अभिधेया शक्ति–रूपा मातृकाएँ पौराणिक शक्ति–उपासना का प्रेरणास्रोत रही हैं। पुराणों की अम्बिका, भवानी, देवी, भद्रकाली, दुर्गा उमा और माहेश्वर आदि देवियाँ वैदिक 'देवी–सूक्त' के ही रूपान्तर हैं।

मार्कण्डेय पुराण के 'दुर्गासप्तशती' आख्यान में देवी के जिन विभिन्न नामरूपों गुणों तथा वैभव का व्याख्यान किया गया है, उसके द्वारा पौराणिक तान्त्रिक युग की पूर्ण प्रतिष्ठा का सहज ही पता चलता है। उसके प्रमाण देश के विभिन्न अंचलों में प्रतिष्ठित मन्दिरों, मठों तथा उपाश्रयों की कला–थाती में जीवित हैं। समस्त भारत में व्यापक रूप से उपलब्ध होने वाली तान्त्रिक अभिप्राय की बहुसंख्यक मूर्तियों में पौराणिक तन्त्रधर्म के प्रचार–प्रसार का इतिहास गुम्फित है। पुराणों के अंगन्यास, अष्टक, स्तोत्र, पटल, कवच, स्तुति, कीलक, मन्त्र तन्त्र आदि में तन्त्रविद्या का बृहत् साहित्य प्रकाश में आया। मध्ययुगीन भारत में पुराणों के प्रभाव से कराया कि नया साधना के अनेक मार्ग प्रशस्त हुए, वहाँ पुराने वैदिक देवताओं के स्थान पर नये देवताओं की अनेक स्थापना हुई। इन नये देवताओं और उनकी विभिन्न विध आराधना ने नये धर्म–पच्चों को जन्म दिया, जिनमें देवताओं के साथ ही उनकी शक्ति–रूपा या पाचीरूपा शक्तियों की भी कल्पना की गयी। तन्त्र दृष्टि से कूर्म पुराण और ब्रह्मवैवर्त पुराण का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में तान्त्रिक विषयों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। कूर्म पुराण में कपाल लकुल, वाम, भैरव और पाँचरात्र आदि जादू–टोना, मारण–मोहन–उच्चाटन से सम्बन्धित तान्त्रिक सम्प्रदायों का उल्लेख हुआ है, जिन्हें कि अवैदिक कहा गया है। इन तन्त्रप्रधान अवैदिक धर्मों का उदय वैदिक युग में ही हो चुका था, जिनको वैदिकों ने भी स्वीकार कर लिया था। अथर्ववेद में उनकी प्रतिक्रिया व्यापक रूप में परिलक्षित हुई है। भारतीय साहित्य पर तान्त्रिक प्रवृत्तियों का प्रभाव निरन्तर बना रहा। महाभारत, देवी भागवत, बृहत्कथा और महायान धर्म के बौद्ध ग्रन्थ सद्धर्म पुण्डरीक तथा प्रज्ञापारमिता आदि विभिन्न ग्रन्थों में उसका प्रभाव व्याप्त है। बौद्धधर्म में महायान सम्प्रदाय के सर्वाधिक प्रभावशाली आचार्य नागार्जुन बौद्धतन्त्र के महान् विद्वान् थे। बुद्धि और कर्म से समन्वित होने के कारण तन्त्रवाद जितना वैज्ञानिक है, उतना ही व्यावहारिक भी है। आचार्य नागार्जुन में इन दोनों का समन्वय था। यही कारण है कि इतिहास में उनके विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व देखने को मिलते हैं, जिन्होंने कि उनकी वास्तविकता को भी भ्रमित कर दिया है।

सांख्य, वेदान्त और नागार्जुन के तन्त्रवाद का अन्य समकालीन धर्मशाखाओं पर इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि शैव, शाक्त, वैष्णव और बौद्ध धर्मों के अनुयायियों के अलग–अलग श्तन्त्रवाद प्रचलित हुए। तन्त्र–साहित्य का क्षेत्र और प्रभाव अत्यन्त व्यापक है। सनी प्रकार के आगम–ग्रन्थों को तन्त्र कहा गया है। सम्मोहनतन्त्र में विभिन्न प्रकार के बाईस आगमों का उल्लेख हुआ है, जिनमें चीनागम, पाशुपत, पाँचरात्र कापालिक, भैरव अघोर, जैन और औद्धों की परिगणना की गयी है। किन्तु ये आगम अधिक प्राचीन नहीं हैं। प्राचीन आगम मुख्य रूप से तीन है–वैष्णव, शाक्त और शैव। वैष्णव आगमों का नाम है पाँचरात्र और वैखानस। शैवों के आगमों का नाम माहेश्वर तथा कापाल है। लकुल, भैरव, काश्मीर शैव आदि उनके अवान्तर भेद हैं। इसी प्रकार शाक्तों के भी केरल, काश्मीर और गौड़ आदि अनेक सम्प्रदाय है। इन सभी सम्प्रदायों में अपने–अपने मत के अनुसार अलग–अलग उपासनाओं का विधान हैं और स्त्री–पुरुष, दोनों को उसका उपासक अधिकारी माना गया है। पाशुपतमत और शैवमत एक ही है। पुराणों में पाशुपतमत के प्रवर्तक कालामुखों, कापालिकों और लकुलीशों आदि अनेक पन्धों का उल्लेख हुआ है। इन सभी तान्त्रिक सम्प्रदाओं का 10वीं शती तक पूर्ण विकास हो चुका था। इस मत के अनुयायी शिवोपासक हैं। कापालिक वाममार्गी है और उनमें नरबलि का प्रचलन था। नाथ और रसेश्वर सम्प्रदाय भी शैव मतानुयायी थे। शियोपासक शैवों की एक शाखा काश्मीर से उदित हुई, जिसके सिद्धान्त विशुद्ध तत्वविद्या पर आधारित हैं और जो अद्वैतवादी है। वैष्णव और शैव मत की तरह शाक्तमत भी प्राचीन है। किन्तु उसकी उन्नति का समय सातवीं से बारहवीं शती के बीच है। शाक्तमत, शैवमत से सर्वचा भिन्न और उपासना–पद्धति की दृष्टि से भी स्वतन्त्र है। तत्व–दृष्टि से वह अद्वैतवादी है।

पुस्तक चर्चा/मिथिलेश यादव

दीर्घायु और आरोग्यता का ग्रंथ रस रत्नाकर

'रस रत्नाकर' और 'रसेन्द्र मंगल' प्राचीन भारत में नागार्जुन नाम के महान् रसायन शास्त्री हुए हैं। इनकी जन्म तिथि एवं जन्मस्थान के विषय में अलग–अलग मत हैं। रसायन शास्त्र में उनकी दो पुस्तकें रस रत्नाकर और रसेन्द्र मंगल बहुत प्रसिद्ध है। चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में इनकी प्रसिद्ध पुस्तकें कक्षपुटतन्त्र, आरोग्यमञ्जरी, योग सार और योगाष्टक है। रसरत्नाकर में इन्होंने रसायन के बारे में बहुत ही गुड़ रहस्यों को उजागर किया है। इसमें उन्होंने अयस्क सिनाबार से पारद को प्राप्त करने की आसवन विधि, रजत के धातुकर्म का वर्णन तथा वनस्पतियों से कई प्रकार के अम्ल और क्षार की प्राप्ति की भी विधियाँ वर्णित हैं। इसके अतिरिक्त रसरत्नाकर में रस (पारे के योगिक) बनाने के प्रयोग दिए गए हैं। इसमें देश में धातुकर्म और कीमियागरी के स्तर का सर्वेक्षण भी दिया गया था। इस पुस्तक में चाँदी, सोना, टिन और ताँबे की कच्ची धातु निकालने और उसे शुद्ध करने के तरीके भी बताए गए हैं। सबसे रहस्यमयी बात यह कि इसमें सोना बनाने की विधि का भी वर्णन है।

पुस्तक में विस्तारपूर्ण दिया गया है कि अन्य धातुएँ सोने में कैसे बदल सकती हैं। यदि सोना न भी बने रसागम विशमन द्वारा ऐसी धातुएँ बनायी जा सकती हैं जिनकी पीली चमक सोने जैसी ही होती थी। इसमें हिंगुल और टिन जैसे केलमाइन से पारे जैसी वस्तु बनाने का तरीका दिया गया है। आज भी भारत के सुदूर प्रान्तों में कुछ ज्ञानी जानकार, योगी साधक हो सकते हैं जो नागार्जुन द्वारा बतायी गयी विधि से सोने का निर्माण करने में सक्षम है। इस किताब में एक जगह शालिवाहन और वट यक्षिणी के बीच रोचक संवाद है। शालिवाहन यक्षिणी से कहता है– हे देवी, मैंने ये स्वर्ण और रत्न तुझ पर निछावर किए, अब मुझे आदेश दो। शालिवाहन की बात सुनकर यक्षिणी कहती है– मैं तुझसे प्रसन्न हूँ। मैं तुझे वे विधियाँ बताऊँगी, जिनको मांडव्य ने सिद्ध किया है। मैं तुम्हें ऐसे–ऐसे योग बताऊँगी, जिनसे सिद्ध किए हुए पारे से ताँबा और सीसा जैसी धातुएँ सोने में बदल जाती है।

द्वितीयक साहित्य में भी रसशास्त्री नागार्जुन के बारे में बहुत ही भ्रम की स्थिति है। पहले माना जाता था कि रसरत्नाकर नामक प्रसिद्ध रसशास्त्रीय ग्रन्थ उनकी ही रचना है किन्तु एक अध्ययन में पता चला कि रसरत्नाकर की पाण्डुलिपि में एक अन्य रचनाकार (नित्यानन्द सिद्ध) का नाम आया है। नागार्जुन भारत के धातुकर्मी एवं रसशास्त्री थे। चीनी और तिब्बती साहित्य के अनुसार वे वैदेह देश (विदर्भ) में जन्मे थे और पास के सतवाहन वंश द्वारा शासित क्षेत्र में चले गये थे। इसके अलावा

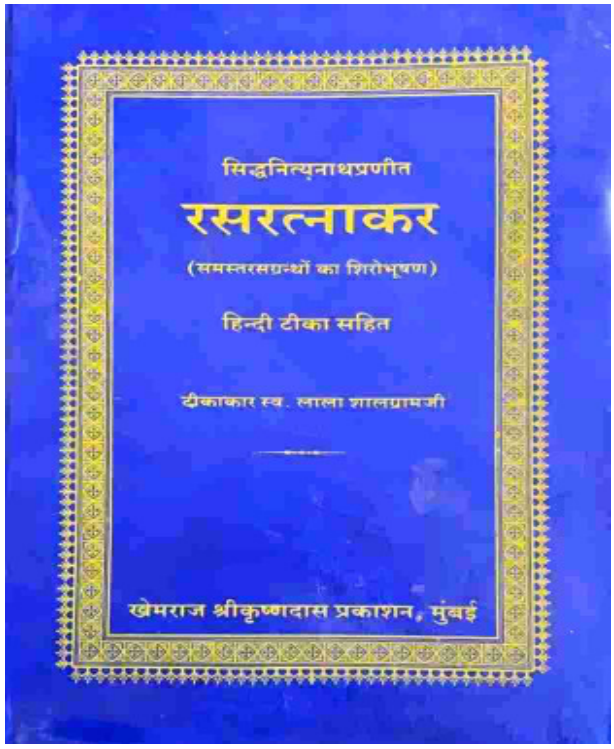

इतिहास में महायान सम्प्रदाय के दार्शनिक नागार्जुन तथा रसशास्त्री नागार्जुन में भी भ्रम की स्थिति बनी रहती है। कुछ प्रमाणों के अनुसार वे 'अमरता' की प्राप्ति की खोज करने में लगे हुए थे और उन्हें पारा तथा लोहा के निष्कर्षण का ज्ञान था। यह पुस्तक उनके और देवताओं के बीच बातचीत की शैली में लिखी गई थी।

रसरत्नाकर में रस (पारे के यौगिक) बनाने के प्रयोग दिए गये हैं। इसमें देश में धातुकर्म और कीमियागरी के स्तर का सर्वेक्षण भी दिया गया था। इस पुस्तक में चाँदी, सोना, टिन और ताँबे की कच्ची धातु निकालने और उसे शुद्ध करने के तरीके भी बताये गए हैं। पारे से संजीवनी और अन्य पदार्थ बनाने के लिए नागार्जुन ने पशुओं और वनस्पति तत्वों और अम्ल और खनिजों का भी इस्तेमाल किया। हीरे, धातु और मोती घोलने के लिए उन्होंने वनस्पति से बने तेजाबों का सुझाव दिया। उसमें खट्टा दलिया, पौधे और फलों के रस थे। उन्होंने और पहले के कीमियागरों ने जिन उपकरणों का इस्तेमाल किया था उसकी सूची भी पुस्तक में दी गई है। आसवन (डिस्टीलेशन), द्रवण (लिक्वीफेक्शन), उर्ध्वपातन (सबलीमेशन) और भूनने के बारे में भी पुस्तक मे वर्णन है।

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन के लिए बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक : श्रीराम तिवारी, समन्वयक : राजेश्वर त्रिवेदी.

आलेख सेवा निःशुल्क वितरण के लिए. फोन: 0734-2521499, 0755-2660407 Email:mvspujjain@gmail.com, vikramadityashodhpeeth@gmail.com